कम्युनिज्म

अपनी ही कसौटी पर

दत्तोपंत ठेंगड़ी

राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन

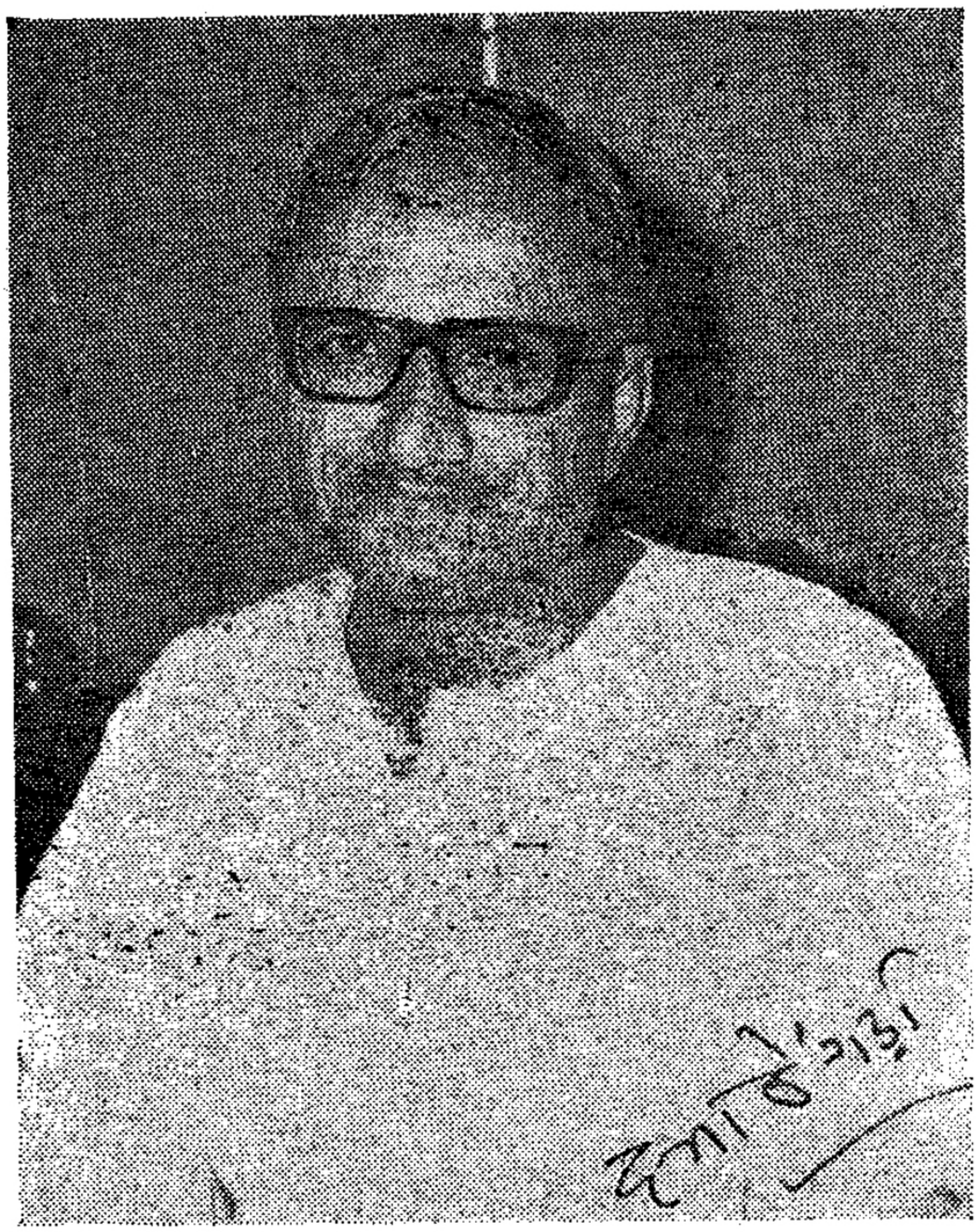

कम्यूनिज्म : अपनी ही कसौटी पर

दत्तोपंत ठेंगड़ी

* प्रकाशक
भारतीय संस्कृति पुनरुत्थान समिति
उत्तर प्रदेश

* प्राप्तिस्थान
राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन
पत्र मञ्जूषा–२०७
डॉ० रघुवीर नगर,
लखनऊ–४

मूल्य : पचहत्तर पैसा

* मुद्रक
स्वदेश प्रेस
डॉ० रघुवीर नगर
लखनऊ–४

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तिका श्री ठेंगड़ी जी के भाषण का सम्पादित रूप है; किन्तु इसमें 'भाषण' की सी विरलता नहीं है। अपने गठन और तारतम्य के कारण यह सुनियोजित रचना प्रतीत होती है। इसका कारण सिर्फ यही है कि यह मौलिक तथा सुलझे हुए मानस से निसृत सुचिंतित प्रवाहमय विश्लेषण है।

इसमें मार्क्सवाद को उसी की कसौटी पर कसा और परखा गया है। चिन्तन की मुक्तता और पूर्वाग्रहहीनता के दावे की कोई आवश्यकता नहीं। ठेंगड़ी जी उन लोगों में नहीं जो मूल्यांकन में सिर्फ एक पक्ष को लेकर चलते हैं। स्थान–स्थान पर मार्क्स का महत्त्व स्वीकार किया गया है। किन्तु इसके साथ ही मार्क्सवाद की न्यूनताओं, अन्तर्विरोधों और विफलताओं के निर्मम आलोचक के नाते वे इस दिशा में चिन्तन की नयी ऊँचाइयों को छू रहे हैं। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

सुविधा और भावों की स्पष्टता के लिए अंग्रेजी शब्दों को कोष्ठकों में दिया गया है। कुछ स्थानों पर अंग्रेजी के उद्धरणों और विशेष शब्दों को पाठ में ही रहने दिया गया है। इस पुस्तिका के लिए अंग्रेजी शब्दों और उद्धरणों के बारे में यही नीति स्वयं श्री ठेंगड़ी जी की इच्छानुसार रखी गयी है।

ठेंगड़ी जी का पूरा नाम श्री दत्तोपन्त ठेंगड़ी है। आपका जन्म वर्धा जिले के आर्वी ग्राम में २० नवम्बर १९२० को हुआ। उन्होंने १९४७ में विधि स्नातक तक का अध्ययन पूर्ण कर लिया था, तब से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक हैं। १९४९ में श्रमिक क्षेत्र में आपने प्रवेश किया था। २३ जुलाई १९५५ में आपने 'भारतीय मजदूर संघ' की स्थापना की। इन्हीं की तपस्या का फल है कि 'भारतीय मजदूर संघ' आज देश के मजदूर संगठनों में प्रथम स्थान पर पहुँच गया है। ठेंगड़ी जी १९६४ में राज्यसभा के सदस्य भी थे; लेकिन एक मौलिक चिन्तक और दूरद्रष्टा नेता के नाते उनकी ऊँचाई निश्चय ही इस औपचारिक परिचय से बिल्कुल भिन्न है, जिसकी एक झलक इस पुस्तिका में पाठक पा सकते हैं।

— प्रकाशक

मार्क्सवाद अपनी ही कसौटी पर

आजकल जिसकी चारों ओर बहुत चर्चा चलती है, ऐसा एक वाद यानी 'इज्म' है– कम्यूनिज्म। इसका मूल्यांकन आज किस तरह हो सकता है ? यही विचार के लिए विषय है। कम्यूनिज्म क्या है, वह सही है या गलत है ? यह विषय विचार के लिए नहीं है। हिन्दू मापदण्ड से कम्यूनिज्म का मूल्यांकन क्या होता है ? यह भी विचार के लिए विषय नहीं है। बल्कि कम्युनिस्टों ने जो अपने पैमाने दिये हैं, यानी उनकी ही जो कसौटियाँ हैं, उन पर कम्यूनिज्म कहाँ तक पूरा और खरा उतरता है, उसका आज का मूल्यांकन क्या है, यहाँ हम इस पर विचार करेंगे।

क्रान्ति पहले कहाँ होगी?

इस विषय पर हम लोग कुछ बातें तो जानते हैं और उन्हें लोगों ने स्वीकार भी किया है। एक बात यह है कि इस 'इज्म' के प्रमुख प्रणेता कार्ल मार्क्स ने जो भी भविष्यवाणियाँ की थीं उनमें से कई गलत निकलीं। यहाँ तक कि प्रमुख भविष्यवाणियाँ की थीं उनमें से कई गलत निकलीं। यहाँ तक कि प्रमुख भविष्यवाणियाँ भी गलत निकली हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने कहा था कि उस देश में सर्वप्रथम कम्युनिस्ट क्रान्ति होगी, जो देश अधिक औद्योगिक हैं, जहाँ औद्योगिकीकरण अधिक हुआ है और इस कारण जहाँ औद्योगिक मजदूरों की संख्या बहुत ज्यादा है। इस दृष्टि से उन्होंने तीन देशों के नाम लिये थे– जर्मनी, ग्रेट–ब्रिटेन और अमरीका; पर क्रान्ति इन देशों में नहीं हुई। इसके विपरीत रूस और चीन जैसे देश जो औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए थे, क्रान्ति वहाँ हुई। इस तरह हम देखते हैं कि पहले क्रान्ति कहाँ होगी। इस विषय में जो भविष्यवाणी मार्क्स ने की थी, वह गलत निकली।

पूँजीवाद आदि का गलत अनुमान

इसी प्रकार ट्रेड यूनियन आन्दोलन और सरकारी आन्दोलन के विषय में उन्होंने जो अन्दाज लगाये थे वे भी गलत निकले। उन्होंने सोचा था कि ये दोनों आन्दोलन बहुत ज्यादा देर तक ठीक ढंग से नहीं चलेंगे। उन्होंने सोचा था कि ट्रेड यूनियन और सहकारिता दोनों समाप्त हो जायेंगे, पर यह सब नहीं हुआ। इस प्रकार उन दोन्नों के बारे में, उनकी शक्ति के विषय में, उनका जो अनुमान था वह भी गलत निकला है। वैसे ही पाश्चात्य संसदीय लोकतन्त्र की जो संस्थाएँ हैं उनके बारे में भी उनका अन्दाज गलत निकला। उन्होंने कहा था कि ये जो संस्थाएँ हैं वे तो पूँजीवादी लोगों के साधन मात्र हैं। उनका दुरुपयोग करते हुए पूँजीवादी अपनी सत्ता को मजबूत बनायेंगे। ये संस्थाएँ ज्यादा समय तक टिकने वाली नहीं हैं। इनकी उपयोगिता ज्यादा नहीं है; परन्तु उनका यह विचार भी गलत निकला। पूँजीवाद का स्वरूप कैसा रहेगा? जहाँ पूँजीवादी व्यवस्था आयी है उस देश की संरचना कैसी होगी, इस सम्बन्ध में उन्होंने जो अनुमान लगाये वे गलत निकले। अमरीका में भी पूँजीवाद का स्वरूप वैसा नहीं है जैसा मार्क्स ने कहा था। यह बात ठीक है कि पूँजीवाद के स्वरूप भिन्न होने के कई कारण हैं। उनमें से एक कारण वह आन्दोलन भी है, जो स्वयं मार्क्स के प्रतिपादित सिद्धान्तों के कारण निर्माण हुआ।

मध्यम वर्ग के बारे में उन्होंने कहा था कि यह वर्ग तो रहेगा ही नहीं। थोड़े से लोग तो उच्च वर्ग में चले जायेंगे और शेष श्रमिक वर्ग में आ जायेंगे, पर आज उल्टा हो रहा है। जगह–जगह मध्यम वर्ग न केवल जीवित है बल्कि पहले से अधिक प्रबल और वर्धमान है यह हर जगह दिखायी देता है।

वैश्विक दर्शन

यह तो कम्युनिस्टों को भी मानना पड़ता है कि कई विषयों में मार्क्स की भविष्यवाणियाँ गलत निकलीं। अब एक–दूसरी बात यह है कि मार्क्स ने आधारभूत सिद्धान्त अर्थात् जो उन्होंने सिद्धान्त दिये उन सबका आधार अधिष्ठान वैश्विक दर्शन है, जिसे अंग्रेजी में कॉस्मोलॉजी कहते हैं। यह जो सारा अस्तित्व है, उसे आप सृष्टि कहिए, विश्व कहिए, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड कहिए, परन्तु सब मिलाकर यह जो अस्तित्व है, उसके विषय में जो नियम हैं, उनको कॉस्मोलॉजी या 'वैश्विक दर्शन' कहा जाता है। इसमें कौन–सी बातें बतानी पड़ती हैं ? पहले यह बताना पड़ता है कि यह जो सारा अस्तित्व है, वह कहाँ

से निकला और फिर यह बताना पड़ता है कि वह किधर जा रहा है, अर्थात् उसका गन्तव्य स्थान कौन सा है? फिर यह बताना पड़ता है कि जहाँ से निकला, वहाँ से निकलते हुए, जहाँ जा रहा है, वहाँ जाने के लिए उसका रास्ता क्या है? अर्थात् यह सारा अस्तित्व कहाँ से निकला, किधर जा रहा है और जाने का रास्ता क्या है ? अंग्रेजी में तीन प्रश्न किये जा सकते हैं, whence, whither and how whence यानी कहाँ से निकला, whither यानी कहाँ जा रहा है और how यानी कैसे अर्थात् किस पद्धति और प्रक्रिया से यह जा रहा है ? इन तीनों का उत्तर देने का प्रयास कार्ल मार्क्स ने किया।

अस्तित्व के जन्म का सिद्धान्त : न्यूटन से

तत्कालीन समाज के ज्ञान की व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए उन्होंने तीनों के उत्तर दिये। उन्होंने अपना एक वैश्विक दर्शन उपस्थित किया। उनके समय तक पदार्थ विज्ञान का सर्वप्रमुख वैज्ञानिक न्यूटन माना जाता था। न्यूटन ने पदार्थ विज्ञान में यह सिद्धान्त निकाला था कि यह जो कुछ सारा है वह जड़–द्रव्य पदार्थ (Matter) से निकला है। जड़–द्रव्य या भौतिक–द्रव्य यह सब कुछ है, यह मौलिक, मूलभूत या बेसिक है।

उन दिनों पश्चिमी जगत में एक वैचारिक संघर्ष चल रहा था। समाचार पत्रों में, पत्रिकाओं में, मञ्च आदि पर यह विचार चल रहा था कि मौलिक चीज कौन सी है ? जड़–पदार्थ (Matter) मौलिक है या मन (Mind) मौलिक है। भौतिक द्रव्य मौलिक है या आत्मशक्ति, मन–मस्तिष्क या कल्पना (spirit, mind, Idea) मौलिक है। एक वर्ग ऐसा था जो कहता था कि मन प्रमुख है। मस्तिष्क के कारण द्रव्य पदार्थ हैं। दूसरा वर्ग कहता था कि द्रव्य पदार्थ (Matter) प्रमुख है। इसके कारण मन–मस्तिष्क है। मन या पदार्थ अथवा पदार्थ या मन का (Matter-mind, mind-matter) संघर्ष इतना चला कि सर्वसाधारण वाचक, पाठक वर्ग ऊब गया कि यह वैज्ञानिकों का झगड़ा हमारे पास क्यों आ रहा है ? हमें इससे कोई मतलब नहीं। इस संघर्ष से लोग कितने ऊब गये थे। इसके बारे में चेस्टरटन ने एक अन्तर्विरोध (paradox) प्रकट किया है। उसने कहा कि What is mind, does not matter, and what is matter, need not mind.

न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि द्रव्य पदार्थ ही सब कुछ है और मन एक उसकी ऊपरी अधिरचना (super structure) है। मन का अपना निजी अस्तित्व कुछ नहीं है और इस दृष्टि से द्रव्य–पदार्थ का ही एक आविष्कार है। पदार्थ

विज्ञान से न्यूटन ने जो सिद्धान्त दिया उसको मार्क्स ने वहाँ से उठाकर अपने वैश्विक दर्शन पर लागू किया और कहा कि वह जो अस्तित्व है, वह जड़ से निकला है।

उत्क्रान्ति की ओर : डार्विन से

अब दूसरा सवाल था कि यह सारा अस्तित्व किधर जा रहा है ? उनके समय में जीव–विज्ञान में डार्विन सर्वाधिक मान्य वैज्ञानिक थे। डार्विन ने उस समय सिद्धान्त दिया था कि सारा अस्तित्व उत्क्रान्ति (evolution) की ओर जा रहा है। मार्क्स ने जीव–विज्ञान का यह सिद्धान्त वहाँ से उठा कर अपने वैश्विक दर्शन में समाहित कर लिया और कहा कि यह द्रव्य पदार्थ की ऊर्ध्वगामी गति है और द्रव्य उत्क्रान्ति की ओर बढ़ता चला जा रहा है। (This is upward movement of matter.)

विरोध विकासवाद : हेगल से

अब तीसरा प्रश्न आता है कि जहाँ से निकला, वहाँ से निकलते हुए और जहाँ जा रहा है वहाँ जाने के लिए रास्ता क्या है ? उनके समय मार्क्स से थोड़े ज्येष्ठ तत्वज्ञ हेगल ने विचार के क्षेत्र में एक 'विरोध–विकासवाद' की कल्पना दी थी। 'Dialecticism' (विरोध विकासवाद) यह संज्ञा इसे हेगल ने दी थी। दर्शन शास्त्र में से हेगल के इस चिन्तन को निकालकर मार्क्स ने इसे अपने वैश्विक दर्शन का अंग बना लिया और कहा कि विरोध विकासवाद (Dialecticism) के माध्यम से जड़पदार्थ (Matter) का विकास होता है। यह विरोध–विकासवाद (Dialecticism) क्या है, इसको बताना आवश्यक है; क्योंकि कम्यूनिज्म में विरोध विकासवाद का बहुत अधिक महत्त्व है। विरोध व विकासवाद एक प्रक्रिया है। ऐसा बताते हैं कि कोई भी एक अवस्था आप ले लीजिए। उस अवस्था को Thesis (क्रिया) कहा जाता था। उस अवस्था (Thesis) के पेट में उसकी विरोधी शक्तियों का निर्माण होता है। वे बढ़ती रहती हैं। जिसको Anti-thesis (प्रतिक्रिया) कहा गया है। Thesis (क्रिया) और Anti-thesis (प्रतिक्रिया) दोनों का संघर्ष होता है और इसमें से Thesis नष्ट होता है। तीसरी चीज निर्माण होती है जिसको Synthesis (संश्लेषण) कहा गया है। यह Synthesis आगे चलकर Thesis बनता है जिसके पेट में Anti-thesis का निर्माण होता है।

उदाहरण के लिए मुर्गी का अण्डा है। यह Thesis है। अब उसके पेट

में प्राणशक्ति निर्माण होती है वह Anti-thesis है, दोनों का संघर्ष होता है, तो यह Thesis (अण्डे का टरफल) नष्ट होता है और तीसरी चीज Synthesis अर्थात् चूजा निकलता है, जो आगे चलकर स्वयं Thesis बनता है और उसके पेट में Anti-thesis यानी विकार निर्माण हो जाते हैं और तीसरी चीज निकलती है। अर्थात् यह क्रम चलता जाता है। किसी भी वृक्ष का बीज, Thesis है। उसके पेट की प्राणशक्ति Anti-thesis है। दोनों का संघर्ष होता है, तो ऊपर का बीज नष्ट होता है और Synthesis यानी उसका अंकुर निकल आता है। इस तरह से वह प्रक्रिया चलती रहती है और यह Synthesis आगे चलकर फिर से स्वयं Thesis बन जाता है। उसके पेट में भी Anti-thesis निर्माण होता है। वह Thesis को नष्ट करता है और तीसरा Synthesis आता है। वह फिर Thesis बनता है। विरोध–विकासवाद की यह प्रक्रिया उन्होंने दी है।

हेगल पर सांख्यदर्शन का प्रभाव

मार्क्स ने हेगल से 'विरोध–विकासवाद' का सिद्धान्त लिया। हेगल के दिमाग में विरोध–विकासवाद का विचार भारतीय सांख्यदर्शन से आया। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि हेगल की मेज पर सांख्यकारिका का जर्मन अनुवाद रखा रहता था। उसका उन्होंने अध्ययन किया था और उसके बाद विरोध विकासवाद का विचार उनके मन में आया। यह समयानुक्रम उनके द्वारा मान्य किया गया है। इस तरह तीनों प्रश्नों के तीन उत्तर मार्क्स ने अपने वैश्विक दर्शन में दिये।

आइन्स्टीन ने पदार्थ की पूर्व-धारणा ध्वस्त कर दी

उस समय मनुष्य के ज्ञान की जो अवस्था थी उसमें ये तीनों उत्तर जँच गये थे; किन्तु मनुष्य के ज्ञान की सीमाएँ अखण्ड वर्द्धमान हैं। उसके कारण ज्ञान बढ़ता गया। पदार्थ विज्ञान न्यूटन का सिद्धान्त कि द्रव्य पदार्थ मौलिक और मूलभूत है, को मिथ्या बताने वाला नया सिद्धान्त आइन्स्टीन के समय आया। आइन्स्टीन के समय जो सिद्धान्त आये उससे सिद्ध हुआ कि द्रव्य पदार्थ को मूलभूत या आदितत्त्व नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि आइन्स्टीन ने यह सिद्ध किया कि द्रव्य पदार्थ को शक्ति (Energy) से परिवर्तित किया जा सकता है, शक्ति द्रव्य (Matter) में बदल सकती है। दोनों परस्पर एक–दूसरे में परिवर्तनीय हैं। (Energy and matter are interconvertible.) इसलिए द्रव्य मौलिक या मूलभूत चीज नहीं हो सकता। जब दोनों एक–दूसरे में परस्पर परिवर्तनशील

सिद्ध हो गये, तो मौलिक या मूलभूत जो भी उनका स्वरूप था, वह समाप्त हुआ। इसलिए यह निर्णय कि यह सारा अस्तित्व द्रव्य पदार्थ से निकला है, स्वयं ही पूरी तरह से गलत सिद्ध हो गया है। आइन्स्टीन ने यह पहला धक्का मार्क्स के वैश्विक दर्शन को पहुँचाया।

उत्क्रान्ति और अपक्रान्ति दोनों होती हैं

अब दूसरा प्रश्न, कि सारा अस्तित्व किधर जा रहा है ? डार्विन से उन्होंने इसका उत्तर लिया था, पर डार्विन के ही जीवनकाल में स्वयं डार्विन को भी ऐसे कुछ सन्देह हुए कि क्या वास्तव में यह सब उत्क्रान्ति की और अनिवार्य रूप से जा रहा है ? आगे चलकर जीव–विद्या ने कुछ प्रगति की और यह तय हुआ कि उत्क्रान्ति (Evolution) भी होती है और अपक्रान्ति (Involution) भी होती है। दोनों क्रियाएँ साथ–साथ चलती हैं और लगतार चलती रहती हैं। इस दृष्टि से यह सिद्धान्त कि यह सब केवल उत्क्रान्ति की ओर जा रहा है, गलत है। जीव विद्या के इस नये सिद्धान्त से मार्क्स के कारण वैश्विक दर्शन का यह दूसरा प्रबल स्तम्भ ध्वस्त हो गया कि सब अनिवार्य रूप से उत्क्रान्ति की ओर जा रहा है।

नष्ट नहीं रूपान्तरण होता है

अब तीसरा बिन्दु है, विरोध–विकासवाद का रास्ता। इसके बारे में भी लोगों के मन में सन्देह निर्माण हुआ। कुछ विचारकों के मन में उस समय भी सन्देह था। इस प्रक्रिया के अनुसार पूँजीवाद Thesis है। उसके पेट में उपभोक्ता और मजदूरों का असन्तोष यह Anti-thesis है। दोनों के संघर्ष में पूँजीवाद के रूप में जो Thesis है वह नष्ट होता है और समाजवाद व साम्यवाद Synthesis निर्माण होता है। कम्यूनिज्म का Synthesis निर्माण होने के बाद वह Thesis बन जायेगा और उसके पेट में भी Anti-thesis का निर्माण होगा। Antithesis की Thesis के साथ लड़ाई होगी तो कम्यूनिज्म खत्म होगा। कार्लमार्क्स का सिद्धान्त यदि सार्वजनीन नियम (Universal Law) है, तो साम्यवादी समाज निर्माण होने के पश्चात् इसी प्रक्रिया में कम्यूनिज्म भी नष्ट होगा अन्यथा यह सार्वजनीन नियम नहीं हो सकता। यह तो विचारक लोगों ने उसी समय कहा था; किन्तु उसके पश्चात् विज्ञान के क्षेत्र में दूसरा सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ, जिसके कारण मार्क्स के इस नियम को भी कुछ धक्का लगा है। विज्ञान ने यह कहा कि कोई भी चीज नष्ट नहीं होती। उसका रूपान्तर

होता है। जैसे पानी बर्फ या भाप में बदल जाता है; परन्तु नष्ट नहीं होता। इसके आगे पदार्थ शक्ति और शक्ति पदार्थ में परिवर्तित हो जाते हैं, पर पदार्थ को समूल नष्ट नहीं किया जा सकता। अर्थात् दुनिया में कोई कोई चीज नष्ट नहीं होती, उसका रूपान्तर भर होता है। विज्ञान का यह सिद्धान्त अपने हिन्दू समाज की विचारधारा के अनुकूल है। भगवद्गीता में आधारभूत सिद्धान्त के बारे में कहा गया है कि "नाऽसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" अनस्तित्व से अस्तित्व आ नहीं सकता और अस्तित्व अपने को स्वयं अनस्तित्व में परिणत नहीं कर सकता। **"Out of non-existence existence cannot emerge. and existence cannot culminate itself into non-existence"** विज्ञान के इस सिद्धान्त के कारण मार्क्स के वैश्विक दर्शन को बड़ा धक्का लगा, यह वैश्विक दर्शन अब विज्ञान की कसौटी पर टिक नहीं सकता।

आप ऐसा मत समझिये कि कम्युनिस्टों का मजदूरों का आन्दोलन है; बोनस, महँगाई भत्ते की लड़ाई है और उसके द्वारा वर्ग संघर्ष का प्रतिपादन केवल ऊपर की बातें हैं। वह एक उनके वैश्विक दर्शन में से निकला है। ये सब विरोध–विकासवाद के ही तर्कसंगत उपसिद्धान्त हैं। इस तरह से मार्क्स के विचारों के आधार को ही विज्ञान ने ध्वस्त कर दिया। अब विज्ञान के कारण कम्युनिस्टों के लिए यह कहना कठिन हो गया है कि मार्क्स ने जो कुछ कहा है वह वैसे का वैसा ही सही है।

पूँजीवाद नष्ट हो जायेगा

अब हम दूसरा रूप देखें कि क्या मार्क्स ने कम्यूनिज्म की रचना में कम्युनिस्टसमाज–रचना की कोई पूरी रूपरेखा (Blue Print) दी है ? बहुत से लोगों को भ्रम है कि उन्होंने कम्युनिस्ट समाज की पूरी रूपरेखा (Blue Print) दी है। मार्क्स ने बहुत अध्ययन किया, यह बात सही है। लन्दन में शाही पुस्तकालय में १८ साल तक अध्ययन किया। उस समय के समस्त विचारकों के साथ उनका व्यक्तिगत तथा पत्राचार का सम्बन्ध था, यह बात सही है। उनके समय में पाश्चात्य जगत में जितने आन्दोलन हुए उनका उन्होंने अध्ययन किया था, यह भी बात सही है। वे श्रेष्ठ विचारक थे, इसमें कोई सन्देह नहीं; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने समाजवाद या साम्यवाद की पूरी रूपरेखा (Blue Print) दी थी। उन्होंने सारी प्रक्रियाओं का विवरण देते हुए विरोध–विकासवाद (Dialecticism) के सिद्धान्त के अनुकूल मानव जाति के

इतिहास का विश्लेषण किया। उन्होंने बताया कि पूँजीवाद की स्थिति कैसे आ गयी। यह पूँजीवाद Thesis बन जायेगा और इसके पेट में असन्तोष का Anti-thesis निर्माण हो जायेगा। पूँजीवाद टूट जायेगा अपने ही अन्तर्विरोधों के बोझ के नीचे दब कर नष्ट हो जायेगा। यह भी बताया कि अब जब स्वाभाविक रूप में ही पूँजीवाद अन्तर्विरोधों के बोझ के नीचे टूटनेवाला है, तो ऐसा क्यों न किया जाये कि जो टूटनेवाली प्रक्रिया है उसकी गति को तेज किया जाये। जैसे यदि 'डिलीवरी' के स्वतन्त्र होने में देरी तथा बहुत अधिक पीड़ा होती है, तो आपरेशन करके डिलीवरी करायी जा सकती है। उसी तरह से पूँजीवाद की परिस्थिति में जो अन्तर आनेवाला है, उसमें ऑपरेशन द्वारा शीघ्रता की जा सकती है। ऑपरेशन यानी क्रान्ति, जो चीज ५०० साल में धीरे–धीरे होने वाली है उसको खूनी क्रान्ति के द्वारा हम आज ही हासिल कर सकते हैं। इससे मनुष्य जाति के ५००–६०० वर्ष बच जायेंगे इस प्रकार उन्होंने खूनी क्रान्ति का प्रतिपादन किया।

मार्क्स ने पूर्ण रूपरेखा (Blue Print) नहीं दी

यह समाजवाद कैसा होगा? हर एक को उसकी आवश्यकतानुसार मिलेगा और हर एक से उसकी शक्ति के अनुसार काम लिया जायेगा; किन्तु यह सिद्धान्त कोई अर्थशास्त्र नहीं है। अर्थशास्त्र में पूरी आर्थिक रूपरेखा होनी चाहिए। समाज में उत्पादन कैसा होगा? उत्पादन के माध्यम कौन से होंगे? उनका नियमन कौन करेगा? वितरण कैसे होगा? वितरण के अभिकर्त्ता कौन होंगे? उसका नियमन कौन करेगा? विनिमय प्रणाली कौन सी होगी? उत्पादन और वितरण के अभिकर्त्ताओं का परस्पर सम्बन्ध कैसा होगा? उन सम्बन्धों का कौन नियमन करेगा। इस सम्पूर्ण रूपरेखा (Blue Print) को अर्थ रचना कहा जाता है। मार्क्स ने यह नहीं दिया। यह बात हम नहीं कह रहे अपितु स्वयं उनके शिष्य लेनिन ने ही कही है कि कार्ल मार्क्स ने समाजवाद की अर्थ रचना नहीं दी।

लेनिन के समक्ष समस्या आयी

जिस समय लेनिन सत्ता में आये उन्होंने मार्क्स की किताब के मुताबिक सब बड़े किसानों और जमींदारों को भगा दिया। खेतिहर मजदूरों में जमीन का बँटवारा किया, पर खेतिहर मजदूरों को जमीन जोतने की बिल्कुल इच्छा नहीं

थी। इसलिए जमीन बंजर पड़ी रह गयी। इसके कारण अनाज का अकाल हो गया और फिर भगाये गये कुलाको (Kulaks) को वापस बुलाना पड़ा। उन्होंने एक नयी अर्थनीति बनायी और उसका नाम भी नयी अर्थनीति (New Economic Policy) रखा गया, पर इस समय लेनिन के कुछ साथियों ने उनके ऊपर आरोप लगाया कि लेनिन मूलमार्ग से Deviate (विचलित) हो गये हैं। Deviation और Deviationist शब्द कोई नये नहीं हैं। जब से साम्यवाद आया है तभी से Deviationism भी आया है। लेनिन के बारे में यह कहा गया है कि लेनिन ने यह मार्क्स से Deviation किया है।

समाजवाद की अर्थरचना के बारे में कार्ल मार्क्स ने एक शब्द भी नहीं लिखा। यह कुछ लोगों को बहुत अटपटा सा लगेगा; किन्तु यह बात सही है। 'दास कैपिटल' में बहुत लिखा; किन्तु उसमें जो भी लिखा है उसका अन्तिम परिणाम यही है कि पूँजीवाद अपने अन्तर्विरोध के नीचे दबकर टूट जायेगा। उसके बाद आनेवाले समाज की आर्थिक रचना उन्होंने नहीं दी।

सावरकर-लेनिन वार्ता

मुझे स्मरण है कि मैं जिस समय कालेज में पढ़ता था उन दिनों हमारे यहाँ वीर सावरकर जी का दौरा था। मेरा छोटा सा गाँव है, वहाँ भी सावरकर जी आये थे वहाँ केवल हाईस्कूल था। वहाँ के बच्चों ने सावरकर जी के खिलाफ एक प्रदर्शन आयोजित किया। जिसके यहाँ वे ठहरे थे उनके यहाँ प्रदर्शनकारी गये। उनके हाथों में कुछ प्रश्नावली थी। वे कह रहे थे कि सावरकर जी इसका जवाब दें। यह स्पष्ट था कि कुछ कम्युनिस्ट नेताओं ने उनको भड़काया था। हम लोगों ने सोचा था कि सावरकर जी ऐसे ही छोड़ देंगे, पर सावरकर जी ने कहा कि भाई सबको बुलाओ। मैं उनके साथ बात करना चाहता हूँ। बच्चों को बुलाया गया। कोई हाईस्कूल पास और कोई हाईस्कूल फेल छात्र थे। उनकी प्रश्नावली में पहला प्रश्न था कि तुम हिन्दू राष्ट्र की बात करते हो, तो हिन्दू राष्ट्र की रूपरेखा (Blue Print) क्या है ? कैसी रचना होगी यह बताओ ? सावरकर जी ने सबको बिठाया और कहा कि प्रश्न पूछो तो ठीक तरह से पूछो। छात्रों ने प्रश्न पूछे; इस पर सावरकर जी हँस दिये।

अपने उत्तर में उन्होंने एक संस्मरण सुनाया। कहा कि जब मैं लन्दन में था, तो उस समय आयरलैण्ड के इमाम डी वेलेरा और रूस के लेनिन दोनों ही लन्दन में थे। लेनिन के पीछे रूसी गुप्तचर थे। उनसे बचने के लिए वह फरार

थे। तीन दिन उनको मैंने इण्डिया हाउस में रखा। दिन भर मैं काम में रहता था; किन्तु रात का मेरा भोजन लेनिन के साथ होता था। लेनिन जब इधर–उधर की बात करते थे, तो मैंने लेनिन से यह कहा कि आपका 'इज्म' आदि क्या है इससे मुझे मतलब नहीं, पर यह बताइये कि यदि रूस का शासन आप लोगों के हाथ में आता है तो आपके 'इज्म' के अनुसार रूस में सामाजिक, आर्थिक रचना क्या होगी ? लेनिन ने हँस कर कहा कि देखो, मेरे पास इस तरह की कोई रूपरेखा (Blue Print) नहीं है और रूपरेखा (Blue Print) हो भी नहीं सकती। क्योंकि जब तक हम शासन में नहीं आते और परिस्थितियाँ दिखायी नहीं देतीं, तब तक हम सारा खाका कैसे तैयार करेंगे। सावरकर जी ने उन प्रदर्शनकारियों से कहा कि आपके जो श्रेष्ठ नेता लेनिन थे, वे अपने कम्युनिस्ट समाज की पूरी रूपरेखा नहीं दे सके। आप मुझसे हिन्दूराष्ट्र की रूपरेखा माँग रहे हैं ? यदि मैं लेनिन के साथ बात करता, तो उनको याद भी दिलाता कि आपने यह कहा था, आप कैसे सारा खाका माँग रहे हैं ? लेनिन तुम तो ऐसे हो कि तुम्हारे साथ बातचीत भी नहीं कर सकता। तुमको सहमत नहीं कर सकता। अच्छा तुम जीत गये, मैं हार गया। इस तरह की बातें सावरकर जी ने बच्चों को कहीं।

युगोस्लाविया की पृथक् अर्थसंरचना

मतलब यह है कि साम्यवादी समाज में अर्थ रचना की कोई निश्चित रूपरेखा नहीं है, इसी के कारण आज दुनिया में स्वयं अपने को मार्क्सवादी कहने वाले जो लोग हैं, उनकी भी तरह–तरह की अर्थरचना सामने आती है। केवल उदाहरण के लिए बताया जाये तो रूस की अपनी एक अलग रचना है। जिस समय युगोस्लाविया में कम्यूनिज्म का शासन आ गया, उन्होंने रूस से अलग रचना प्रारम्भ कर दी। रूस में सम्पूर्ण स्वामित्व सरकार का होता है, सारे फार्म व उद्योग सरकार के स्वामित्व में रहते हैं। उद्योगों और कारखानों का कारोबार भी सरकार की मशीनरी चलाती है, पर युगोस्लाविया ने कुछ अन्तर किया है और यह कहा कि सरकार सम्पूर्ण देश के लिए योजना बनायेगी। पूरे देश के लिए राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित करेगी। हरएक उद्योग के लिए लक्ष्य निर्धारित करेगी। उद्योगों में जितनी इकाइयाँ हैं उनके लिए भी लक्ष्य देगी; लेकिन कारखाने का कारोबार चलाने का दायित्व वहीं के मजदूरों के हाथ में रहेगा। अपना कारखाना चलाने का पूरा अधिकार कामगार परिषदों (Workers Council) को रहेगा। यह वहीं के मजदूरों की सीधी जिम्मेदारी रहेगी। उसमें

सरकार हस्तक्षेप नहीं करेगी; किन्तु सरकार इतना देखेगी कि यह कामगार परिषदें ऐसे ढंग से अपना कारखाना चलायें कि जिससे राष्ट्रीय लक्ष्य की पूर्ति हो। बाकी कारोबार कैसे चलते हैं, वेतन कितना देते हैं, आपस में बँटवारा कैसे करते हैं, यह सब मजदूरों का काम है। इस तरह से राष्ट्रीय लक्ष्य के अन्तर्गत मजदूरों को अपना कारखाना सँभालने की पूरी स्वतन्त्रता है। जब यह तरीका यूगोस्लाविया ने अपनाया, तो रूस ने कहा कि यह भटकाव (Deviation) है। ऐसा सिर्फ इसलिए कहा गया क्योंकि यूगोस्लाविया में जो कुछ किया गया वह रूस से भिन्न था। कुछ वर्षों पूर्व हंगरी ने कुछ अलग निर्माण करने का प्रयास किया। जैसे युगोस्लाविया में कामगार परिषदों को अपने–अपने कारखानों का कारोबार करने की स्वतन्त्रता है, वैसे हंगरी ने यह सोचा कि राष्ट्रीय लक्ष्य दिये जायें और एक–एक उद्योग के लिए निश्चित लक्ष्य दिये जायें; किन्तु एक बार राष्ट्रीय लक्ष्य निश्चित करने के बाद फिर कारखानों की बाकी जितनी बातें हैं उसकी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता वहाँ के प्रबन्धकों को दी जाये।

हंगरी और चेकोस्लोवाकिया को रूस ने अनुमति नहीं दी

जो स्वतन्त्रता यूगोस्लाविया ने मजदूरों को दी, वहीं आन्तरिक स्वतन्त्रता हंगरी ने प्रबन्धक मण्डल को देने का प्रयास किया। कच्चा माल कहाँ से खरीदना, किस दर पर खरीदना, बाजार कैसे ढूँढ़ना, बाजार कैसे निर्माण करना, मजदूरों का वेतन तय करना आदि कुछ अधिकारों की स्वतन्त्रता व स्वायत्तता प्रबन्धक मण्डल को दिये गये। तुरन्त रूस ने इस पर आपत्ति उठायी। रूस को हर समय यह डर रहता है कि यदि साम्यवादी रचना में कोई दूसरा प्रयोग सफल होता है, तो रूसी लोग भी कहेंगे कि जो प्रयोग वहाँ सफल हुआ है, वह यहाँ क्यों नहीं किया जाये ? इसी तरह के प्रयोग के विषय में चेकोस्लोवाकिया के नेताओं ने कहा था कि हम लोग थोड़ा परीक्षण और प्रयोग कर रहे हैं। इसको २–४ साल देखेंगे। यदि इसके परिणाम अच्छे आते हैं, तो इसको लागू करेंगे पर रूस इसकी अनुमति कैसे दे सकता था।

चीन–क्रान्ति अमर रहे

चीन में जो चला है वह तो लोगों की दृष्टि में है। वहाँ अखण्ड क्रान्ति चल रही है। इन्कलाब–जिन्दाबाद कहा गया। यह बड़ी विचित्र बात है। इन्कलाब यानी क्रान्ति, क्रान्ति को यानी परिवर्तन को जिन्दाबाद कहा जाये, तो परिवर्तन कायम होना चाहिए। परिवर्तन अखण्ड चलते रहना चाहिए।

'Long live revolution' का मतलब होता है कि 'Long live change'। कोई परिवर्तन जब हो जाता है और यदि वह स्थिति ज्यादा देर तक टिकती है, तो उसको अमर क्रान्ति नहीं कहा जा सकता। इसलिए चीन में क्रान्ति का क्रम अखण्ड रूप से चल रहा है। किन्हीं कारणों से क्यों न हो, हमेशा गड़बड़ चलती रहती है। सामाजिक नीति स्थिर नहीं। इस तरह से चीन का चित्र अलग है। कुछ पूर्वी यूरोप के देशों का चित्र अलग है। रूस का चित्र अलग है। इसका एक कारण यह भी है कि साम्यवाद का कोई अधिकृत स्वरूप नहीं। इसके कारण अलग–अलग जगह अलग–अलग प्रयोग चलते हैं और सब अपने को मार्क्सवादी कहते हैं। वास्तव में यदि मार्क्सिज़्म या कम्यूनिज्म एक 'इज्म' है, तो उसकी एक प्रणाली होनी चाहिए। 'इज्म' का मतलब एक सांगोपांग सामाजिक आर्थिक प्रणाली होता है और फिर ऐसी प्रणाली के अन्तर्गत सब लोगों को चलना चाहिए। इस तरह की एक प्रणाली किसी देश या इज्म के द्वारा सब देशों को बताना बुद्धिमानी है या नहीं, यह एक अलग सवाल है।

कोई अधिकृत स्वरूप नहीं

हमारी रचना में इज्म की बात नहीं है। इसलिए सब लोगों के लिए एक ही रचना का होना आवश्यक नहीं। विचारों और प्रक्रिया का एक–मार्गीकरण (Regimentation) हमारे यहाँ नहीं है; किन्तु जहाँ कोई मार्क्सवाद या कम्यूनिज्म की बात लेकर चलते हैं, तो अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र की दृष्टि से एक अधिकृत रचना होनी चाहिए; लेकिन कोई अधिकृत स्वरूप मार्क्स ने नहीं दिया। इसलिए अलग–अलग प्रयोग चलते हैं। फिर भी सब लोग मार्क्स का नाम लेते हैं।

मनुष्यों का राष्ट्र निरपेक्ष बँटवारा

एक बात और है। यदि कोई इज्म है, तो सम्पूर्ण मानवता के लिए और सम्पूर्ण मानवता का विचार उसमें आना चाहिए। इस इज्म में मानवता के सभी अंग बराबर बिठाने चाहिए, जो 'इज्म' अर्थरचना को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता हो, उसे तो सब महत्त्वपूर्ण अंगों का विचार विस्तार से करना ही चाहिए।

मार्क्स ने कहा कि राष्ट्रीयता के अनुसार मनुष्यता का बँटवारा गलत है। मार्क्स ने कहा कि यह तो केवल दो खेमों में विभक्त है। एक खेमा उत्पादन के साधन के मालिकों (Haves) का है। ये सम्पन्नजन हैं। दुनिया में सभी देशों

के उत्पादन के साधनों के तमाम मालिकों का मिलकर एक खेमा है और शेष जिनके पास उत्पादन के साधन नहीं हैं वे वञ्चितजन (Have nots) हैं। इनका दूसरा खेमा है। दोनों खेमों को अलग करनेवाली जो रेखा है वह लम्ब स्वरूप (Vertical) नहीं है। लम्बरूप रेखा का अर्थ यहाँ राष्ट्रीयता की रेखाओं से है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, भारत व चीन में मानवता का वर्गीकरण करनेवाली रेखाएँ लम्बरूप हैं। मगर सम्पन्नजनों (Haves) को विभाजित करनेवाली रेखा पड़ी हुई समक्षितिजीय (Horizontal) रेखा है, जो दुनिया के हर देश से होकर गुजरती है। इस रेखा के जो ऊपर है वह सारे सम्पन्नजन (Haves) हैं तथा इस रेखा के जो नीचे हैं वे सब वञ्चितजन (Have nots) हैं। इस तरह सारी दुनिया को मार्क्स ने राष्ट्रीयता निरपेक्ष दो खेमों में विभक्त किया था।

मार्क्स ने किसानों का स्पष्ट विचार नहीं किया

मार्क्स इंग्लैण्ड में थे। सम्पूर्ण अध्ययन वहीं किया था और मार्क्स के मस्तिष्क पर इग्लैण्ड की पृष्ठभूमि का बड़ा असर था। इंग्लैण्ड कृषि–प्रधान देश नहीं था। इंग्लैण्ड की अर्थनीति कृषि प्रधान नीति नहीं हो सकती थी। इसका भी प्रभाव उनके मन पर था। इसके कारण कृषि–प्रधान देशों की समस्याओं की कल्पना वे ठीक ढंग से नहीं कर सके। पूर्वी यूरोप के कतिपय कृषि–प्रधान देशों के अनेक कम्युनिस्टों ने उनको पत्र लिखकर कुछ प्रश्न किये कि छोटे किसान की गिनती कम्युनिस्ट सिद्धान्त–सरणी में कहाँ आती है ? सम्पन्नजन (Haves) और वञ्चितजन (Have nots) की कल्पना इस सन्दर्भ में क्या है ? क्या जिसके पास उत्पादन का थोड़ा भी साधन है, वह सम्पन्नजन (Haves) में है और जिसके पास बिल्कुल साधन नहीं है वही वञ्चितजन (Have nots) में है ? उन्होंने पूछा कि जिसके पास आधा एकड़ या डेढ़ एकड़ जमीन है उस छोटे किसान को कौन से खेमे में रखेंगे ? आप यदि कहेंगे कि वह वञ्चितजन (Have nots) में है, तो सवाल यह है कि चूँकि उसके पास उत्पादन का साधन है इसलिए उसको सम्पन्नजन के खेमे में क्यों न डाला जाये ?

हमारे यहाँ की स्थिति में टाटा, बिड़ला, डालमिया आदि सम्पन्न जनों (Haves) के खेमे में हों और आधे या एक एकड़ वाले करोड़ों छोटे किसान भी इसी सम्पन्न वर्ग (Haves) के खेमे में गिने जायें तो तो यह बड़ी विचित्र धाँधली होगी। दोनों में कहीं कोई तुलना नहीं। उसके बारे में यदि यह कहेंगे कि यह

किसान अपनी आधा एकड़ जमीन तो जोतता है; किन्तु उससे उसके परिवार का पालन–पोषण नहीं हो सकता; इसलिए बाकी समय में वह दूसरों की खेती आदि पर मजदूरी करता है। वहाँ से कुछ रोजी कमाता है। इस तरह वह खेती और मजदूरी दोनों करता है और अपनी छोटी जमीन का मालिक भी है। चूँकि वह गरीब है इसलिए उसे सम्पन्नजनों के वर्ग (Haves) में नहीं रखा जा सकता, पर चूँकि वह अपनी खेती का मालिक है उसे वञ्चितजनों में भी कैसे रखा जाये ? यह प्रश्न मार्क्स से पूछा गया। मार्क्स अपने जीवन के अन्त तक इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे पाये। आगे चलकर यही समस्या बरकरार रही।

नेतृत्व और क्रान्ति कौन करेंगे ?

जब प्रत्यक्ष क्रान्ति का मौका आया, तो उस समय लेनिन के सामने विकट समस्या आयी। रूस कम औद्योगीकरण वाला राष्ट्र था। वहाँ मजदूरों की संख्या कम थी। समस्या यह थी कि क्रान्ति का चक्का आगे किसके सहारे बढ़ाया जाये ? एक बात जानकारी के लिए कहना आवश्यक है कि कम्यूनिज्म में सब मजदूरों के लिए एक जैसी मान्यता एवं व्यवस्था लागू नहीं। सर्वहारा (Proletariate) का अर्थ इस तरह का मजदूर जिसके पास भगवान् के दिये हुए दो हाथों को छोड़कर और कुछ साधन नहीं। (Nothing to fall back upon.) मार्क्स ने कहा कि ऐसे व्यक्ति ही क्रान्ति के अग्रेसर बनेंगे।

अब लेनिन के सामने दो तरह की समस्याएँ आयीं। मार्क्स ने सिर्फ सिद्धान्त–सरणी दी थी लेकिन लेनिन को प्रत्यक्ष क्रान्ति का कार्य करना था। उन्होंने पहला अनुभव यह किया कि सर्वहारा (Proletariate) की क्रान्ति के लिए मरने की तैयारी हो सकती है; क्योंकि उसके लिए कहा गया है कि तुम्हारा कुछ भी नुकसान नहीं, क्रान्ति में केवल तुम्हारे बन्धन टूटेंगे। (You have nothing to lose but your chains.) इसलिए क्रान्ति के लिए सिपाही का और मरने का काम तो वह कर सकता है; किन्तु नेतृत्व में कुछ बुद्धिमानी तथा कुछ गुणों का उत्कर्ष आवश्यक है। वह सर्वहारा में नहीं पाया जा सकता। इस तरह का कम गुणी और कम बुद्धिमान व्यक्ति नेतृत्व करने का काम सफलतापूर्वक कैसे करेगा ? लेनिन ने मार्क्स के सिद्धान्त में परिवर्तन करते हुए कहा कि सर्वहारा नेतृत्व नहीं करेगा, यह सिपाही का काम करेगा। कम्युनिस्ट पार्टी के कर्णधार (Professional Revolutionaries) नेतृत्व करेंगे।

किसान साथ देगा ?

उसी समय किसान का भी उसको विचार करना पड़ा। वहाँ सर्वहारा मजदूरों की संख्या भी कम थी। विना किसानों की सहायता से रूस में कोई रचना लाना सम्भव नहीं था। उन्होंने सिद्धान्त बताया कि सर्वहारा वर्ग का प्रभुत्व रहेगा; लेकिन क्रान्ति के बाद जो समाज–रचना होगी उसमें सर्वहारा और किसान दोनों का साथ रहेगा; क्योंकि किसान पिछड़ा हुआ है और सर्वहारा अगुवा रहता है इसलिए सर्वहारा के प्रभुत्व में सर्वहारा और किसान का गठबन्धन काम करेगा।

चीन में किसान आगे रहे

आगे चलकर माओत्सेतुंग के समक्ष चीन में क्रान्ति का अवसर आया। चीन में औद्योगिक मजदूरों की संख्या और भी बहुत कम थी और वहाँ जो भी क्रान्तिकार्य होना था वह किसानों के द्वारा होना था। उन्होंने किसानों को सामने करते हुए किसानों के ही भरोसे क्रान्ति की। रूस के जो किताबी मार्क्सवादी और किताबी कम्युनिस्ट थे उनके सामने प्रश्न उठा कि जिस क्रान्ति का नेतृत्व किसानों ने किया उसको कम्युनिस्ट क्रान्ति कैसे कहा जा सकता है ? इसी कारण जैसे ही चीन में कम्युनिस्ट क्रान्ति सफल हुई रूस ने अधिकृत वक्तव्य दिया कि यह और कुछ भले ही हो अधिकृत कम्युनिस्ट क्रान्ति नहीं है।

किसानों की भूमिका अस्पष्ट

किसान के विषय में मार्क्स अपने अन्तिम क्षण तक निश्चित भूमिका न दे सके। उसके बाद भी कम्युनिस्ट इसे तय नहीं कर सके। राजनैतिक आवश्यकता के नाते कभी गठबन्धन कहा गया, कभी कुछ और कहा गया; किन्तु यह जो मानव जाति का सबसे बड़ा भाग किसानों का है; इसके विषय में कुछ भी निश्चित भूमिका अब तक नहीं बना सके इस तरह से सारे चित्र में अनिश्चितता दिखायी देती है। अर्थशास्त्र क्या रहेगा, इसके बारे में भी कोई निश्चित उत्तर नहीं। किसानों के बारे में क्या भूमिका रहेगी, इसके बारे में भी कोई उत्तर नहीं। इस दृष्टि से मार्क्स के विचार को यदि हमने 'इज्म' मान लिया, तो यह बहुत ही त्रुटिपूर्ण होगा।

इज्म का मतलब यह होता है कि उन सिद्धान्तों एवं विचारों को परिपूर्णत्व प्राप्त हो चुका है, इसलिए वह विचारों की बन्द किताब हो जाती है।

(Ism is a closed book of thought) इस दृष्टि से देखा तो यह बड़ी त्रुटि है। किन्तु हम लोग जिस ढंग से विचार करते हैं उस ढंग से यह त्रुटि नहीं है। हम तो समझ सकते हैं कि परिपूर्ण रूपरेखा (Blue Print) हो नहीं सकती। होने की आवश्यकता नहीं, पर इज्म के लिए इसकी आवश्यकता है।

निजी सम्पत्ति और खेती

साम्यवादी समाज के स्वरूप की परिपूर्ण रूपरेखा न सही तो भी स्थूल मार्गदर्शक सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न कम्युनिस्ट देशों के कारोबार का यदि विश्लेषण करें तो बड़ा विचित्र दृश्य दिखायी देता है। उदाहरण के लिए हम पहले रूस को ही लें क्योंकि सबसे पहले कम्युनिस्ट राज्य क्रान्ति रूस में हुई। मार्क्स के द्वारा दिये गये स्थूल मार्गदर्शक सिद्धान्तों के प्रकाश में आज रूस की जो हालत है उस पर हम दृष्टिपात करें। स्थूल मार्गदर्शक सिद्धान्तों के आधार पर उन्होंने सबसे पहले निजी सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त कर दिया। धीरे–धीरे यह दिखायी दिया कि किसी के पास जमीन या कोई और सम्पत्ति नहीं रही। किसानों से जमीन छीनने के बाद सामूहिक खेती–फार्म पर उनको मजदूर के नाते ही रखा गया। अपना छोटा सा टुकड़ा देखने के कारण उत्पादन का जो उत्साह तथा कार्य करने की जो प्रेरणा उनमें होती थी वह प्रेरणा समाप्त हो गयी। फलस्वरूप सामूहिक खेती–फार्म पर उत्पादन की दर फसल–दर–फसल कम होने लगी। इसके बाद उन्होंने प्रायोगिक रूप में थोड़ी–सी जमीन किसानों को बागवानी के लिए देना शुरू किया। इससे ऐसा अनुभव आया कि अपने उस छोटे से टुकड़े में लोगों ने बहुत अधिक दिलचस्पी ली; क्योंकि भले ही छोटा–सा टुकड़ा था, पर निजी सम्पत्ति के नाते था। परिणामस्वरूप इन निजी टुकड़ों में अनुपाततया उत्पादन बहुत ज्यादा हुआ; परन्तु सामूहिक खेती फार्म पर उत्पादन की दर बहुत कम रही। अब एक तरफ तो निजी खेतों पर उत्पादन वृद्धि की प्रयोगसिद्ध सहज प्रेरणा थी और दूसरी ओर मार्क्स द्वारा दिये गये स्थूल मार्गदर्शक सिद्धान्त थे। उत्पादन वृद्धि की जटिल समस्या के समाधान के लिए उन्होंने पुनः बागवानी की जमीन का क्षेत्रफल बढ़ाया। पहले उन्होंने कहा था कि आपकी जमीन में चाहे सब्जियाँ हों, या फल हों, आप उसे बाजार में बेंच नहीं सकते। सरकार ही उसे अपनी कीमत पर खरीद लेगी। इस शर्त के बाद फिर से उत्पादन गिर गया। फिर उन्होंने कहा कि आप बेंच तो सकते हैं; लेकिन रूसी नागरिक को नहीं बेंच सकते, विदेशियों

को बेचना होगा, बाजार में नहीं बचे सकते, रेलवे स्टेशन और बस अड्डों पर बेचना होगा। जब बेचने का स्वातन्त्र्य प्राप्त हुआ, तो बागायत में उत्पादन बढ़ गया। आज धीरे–धीरे उन्होंने निजी सम्पत्ति प्रत्येक के लिए कायम कर दी, भले ही सीमित मात्रा में ही क्यों न हो ?

मकान का स्वामित्व

फिर दूसरी बात यह हुई कि किसी का कोई मकान नहीं रहे। सारे मकान राज्य के हो गये। आज भी सारे मकान राज्य के अधिकार में हैं; लेकिन आज मकान पर सीमित निजी अधिकार मकान वालों को दिये गये हैं। अर्थात् जब तक मनुष्य जीवित है, तब तक वह 'फ्लैट' का स्वामी रहेगा। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसी के वारिस वहाँ पर रहते हैं, तो वह फ्लैट उनके पास रहेगा। उनकी ही निजी सम्पत्ति के नाते रहेगा। यदि कोई वारिस नहीं रहा, तो वह सीधे राज्य के अधिकार में ही जायेगा।

परिवार टूट नहीं सके

मार्क्स परिवार के घोर विरोधी थे। इस सिलसिले में परिवार के बारे में भी विचार किया जाये। उन्होंने कहा था कि परिवार तो बुर्जुआ व्यवस्था है। यह समाज विरोधी तत्त्वों ने निर्माण की है। परिवारों को नष्ट करना चाहिए। मार्क्स ने बताया कि परिवार नाम की कोई चीज न रहे। कोई किसी का पति नहीं, कोई किसी की पत्नी नहीं। सम्पूर्ण समाज एक है। सब लोग समूह में रहेंगे। पति नहीं है, पत्नी नहीं है, बच्चा नहीं है, पिता नहीं है, माता नहीं है, तो कुछ नहीं है। जैसे जानवरों का बाड़ा होता है, सब एक–दूसरे के साथ समागम करते हैं और प्रजनन उत्पादन होता है, वैसे ही होगा, जो सन्तानोत्पत्ति होगी वह किसी के मातृत्व की या पितृत्व की नहीं होगी। जैसे ही बच्चा पैदा होगा वह राज्य का हो जायेगा अर्थात् राज्य और बच्चे का सीधा सम्बन्ध रहेगा। बीच में माता, पिता आदि की कोई बात नहीं है। इसके कारण पितृत्व को स्वीकार करने का कोई झंझट नहीं है। इस तरह से समूह का निर्माण होगा। ऐसे समूहों (कम्यून्स) के निर्माण का प्रयास भी रूस में हुआ; किन्तु यह प्रयास असफल रहा। लोग समूहों (कम्यून्स) में रुचि नहीं लेते, ऐसा दिखायी देने लगा। विवशता में 'कम्यून्स' में रहना पड़ा, तो भी विशेष स्त्री, विशेष पुरुष, इनमें परस्पर विशेष आकर्षण तथा आपस में मिलकर रहने की इच्छा है, ऐसा दिखायी देने लगा। यह भी अनुभव आया कि बच्चों का पालन–पोषण आदि राज्य के बच्चों के नाते

किया गया तो बच्चों का विकास ठीक ढंग से नहीं होता था। धीर–धीरे कम्यून्स की पद्धति को छोड़ना पड़ा और कम्यून्स टूट गये। स्त्री और पुरुष इकट्ठा रहने लगे और उनको वैधानिक रूप से पति–पत्नी नहीं कहा; किन्तु पति–पत्नी का ही सम्बन्ध रहा। दोनों इकट्ठा रहने लगे, एक ही फ्लैट में रहने लगे, उनके बच्चे भी उनके साथ रहने लगे इस तरह से फिर परिवार संस्था आयी। यह भी इच्छा निर्माण हुई कि यह परिवार संस्था परिपूर्णत्व प्राप्त करे। दो साल पूर्व वहाँ परिपूर्णत्व की आखिरी कल्पना के लिए लोगों ने थोड़ी–सी आवाज उठायी। कहा कि हमें हमारे बच्चों का पितृत्व वैधानिक रूप से प्रदान किया जाये। इस माँग को सरकार ने मान लिया। आज परिवार संस्था, जो कम्यूनिज्म के या मार्क्सवाद के अनुसार एक प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ मान्यता थी, को हम रूस में देख सकते हैं।

लाभ और स्पर्द्धा की ओर लौटना पड़ा

फिर सारे उद्योग सरकार ने अपने हाथ में ले लिये। उन्होंने कहा कि इससे उत्पादन बढ़ेगा, पर काम करने की प्रेरणा क्या रहेगी। मनुष्यता का विकास हो, मनुष्य का कल्याण हो, क्या केवल इसी प्रेरणा से लोग काम करेंगे ? लेकिन जब भौतिकता ही प्रेरणा का आधारभूत तत्त्व हो, तो केवल भौतिकता के आधार पर सेवा की प्रेरणा हो नहीं सकती। मानवता की प्रेरणा भी नहीं हो सकती। रूस में उद्योगों के लिए जब इन प्रेरणाओं से ज्यादा काम करने को तैयार नहीं हुए, तो बलात् काम करवाना पड़ा। हड़ताल का अधिकार उनसे छीन लिया गया।

हिन्दुस्थान में कम्युनिस्ट हड़ताल के अगुआ बनते हैं। रूस में हड़ताल का अधिकार नहीं है। अपनी ट्रेड यूनियनों को स्वयं चलाने का अधिकार नहीं। अपनी यूनियनों के पदाधिकारियों का स्वयं चुनाव नहीं कर सकते। पार्टी जिसका नाम देगी, यूनियन को उसे ही मन्त्री के नाते चुनना होगा। इस तरह से मजदूरों के सारे अधिकार छीन लिये गये। इन सबका फल यह हुआ कि उत्पादन की प्रेरणा मर सी गयी। उन्हें सोचना पड़ा कि प्रेरणा की दृष्टि से क्या किया जाय ? जिस पूँजीवादी व्यवस्था की निन्दा की थी, जिसका घोर–विरोध किया था, बाध्य होकर उसके ही कुछ सिद्धान्तों को स्वीकार करना पड़ा। दो सिद्धान्त हैं– एक है स्पर्द्धा और दूसरा लाभ पाने का उद्देश्य। इन दोनों की

मार्क्स ने बहुत निन्दा की थी। उन्होंने कहा था कि इन दोनों का तो निर्मूलन ही हो जाना चाहिए। जब निर्मूलन हो गया, तो उत्पादन घट गया। दूसरा कोई प्रेरणा का स्रोत नहीं था। इसलिए फिर से स्पर्द्धा और लाभ के सिद्धान्तों को परीक्षण के तौर पर शुरू किया गया।

सफल और असफल प्रयोग

सन् १९६१ के अक्टूबर में मध्य साइबेरिया में इञ्जीनियरिंग और केमिकल्स के प्लान्ट्स में फैक्टरी के स्तर पर ये दोनों सिद्धान्त लागू किये गये। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि एक क्षेत्र में दवाओं के पाँच कारखाने हैं। सरकार उन्हें कहे कि तुम अपना कारोबार इस ढंग से चलाओ कि जिससे तुम्हारा लाभ अन्य चार के मुकाबले बढ़े–आपस में स्पर्द्धा रहेगी। पहले यह कहा गया था कि सबके लिए समान नियम हैं। इसके कारण स्पर्द्धा का कोई सवाल नहीं था। लाभ का कोई सवाल नहीं। तुम कुछ कम वेतन दोगे तो भी चलेगा। दाम बढ़ा देने पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं। सस्ता कच्चा माल खरीदने के बारे में भी कोई अड़चन नहीं। तुम स्पर्द्धा कर सकते हो;लेकिन हम यह देखेंगे कि दवाओं के पाँचों कारखानों में किसका लाभ ज्यादा होता है ? उनको पुरस्कार भी मिलेगा। इस साल का अच्छा औषधि कारखाना यह है, यह भी घोषित होगा। जब पूँजीवादी व्यवस्था के दोनों सिद्धान्तों को लागू किया गया तो दिखायी दिया कि यह प्रयोग सफल हुआ। आज ये दोनों सिद्धान्त चल रहे हैं। अर्थात् जिनका घोर निषेध किया गया था, उन सिद्धान्तों को फिर से लागू किया गया। मार्क्सवाद की यह सैद्धान्तिक पराजय थी।

माँग के अनुसार पूर्ति भी की जाने लगी हर एक की

पूँजीवादी सिद्धान्त, माँग के अनुसार पूर्ति के सिद्धान्त की भी निन्दा मार्क्स ने की थी। मार्क्स ने कहा माँग के अनुसार पूर्ति के सिद्धान्त को हम चलने नहीं देंगे.और कम्यूनिज्म में इस सिद्धान्त के लिए कोई स्थान होने का सवाल ही खड़ा नहीं होना चाहिए था; किन्तु फिर उनको लगा कि माँग के अनुसार पूर्ति न होने के कारण उपभोक्ता वस्तुओं में एकरूपता आ गयी। एक जैसी सभी चीजें होने के कारण लोगों की खरीदने की इच्छा कम होने लगी। उदाहरणार्थ कपड़े को लें। यदि सबके लिए एक जैसा कपड़ा पैदा होगा, तो लोगों की खरीदने की इच्छा कम होती है। उनको दिखायी देने लगा कि हर एक की रुचि अलग होती है। किसी को कोई रंग अच्छा लगता है किसी को कोई डिजाइन

अच्छी लगती है। अलग–अलग लोगों की रुचि को ख्याल में रखते हुए यदि कपड़े की डिजाइन में अन्तर कर दिया जाये, अधिकाश लोगों की पसंदगी को सन्तुष्ट करने के लिए कपड़ों को जुदा–जुदा रंगों में और बारीक या मोटा बनाया जाये, तो खपत बढ़ जायेगी और वह ज्यादा बेचा जायेगा। इसका प्रयोग १९६६ के जून में उन्होंने कपड़ा उद्योग में किया। अलग–अलग प्रदेशों में जाकर लोगों की कपड़े के बारे में विभिन्न रुचियों को जानने के लिए विशेष व्यक्तियों को नियुक्त किया। लोगों की रुझान का पता लगाकर–वैसा ही कपड़ा निर्माण करने का प्रयास किया गया। कपड़ा उद्योग में इस प्रयोग के सफल होने के कारण आज रूस में यह सोचा जा रहा है कि बाकी उपभोक्ता वस्तुओं के बारे में भी माँग के अनुसार पूर्ति का सिद्धान्त फिर से कैसे लागू किया जा सकता हैं इस तरह हम देखते हैं कि कम्युनिस्ट मार्क्स की मूल अवधारणाओं से एक–एक करके कदम पीछे हटाते जा रहे हैं।

वर्गहीन समाज में नये वर्गों ने जन्म लिया

उन्होंने यह भी कहा कि जब सभी वर्ग नष्ट हो जायेंगे, तो वर्गहीन समाज का निर्माण होगा। हम वर्गहीन समाज की रचना करना चाहते है; लेकिन उसमें रूस का और बाकी कम्युनिस्ट देशों का यह अनुभव इससे विपरीत दिशा में रहा। यह सही है कि पुराने वर्ग नष्ट हुए; किन्तु नये वर्ग बनते और बद्धमूल होते जा रहे हैं। युगोस्लाविया के भूतपूर्व उपप्रधानमन्त्री ने अपने 'दि न्यू क्लास' किताब में कहा है कि हमने पुराने वर्ग नष्ट किये; किन्तु नये वर्गों का निर्माण हुआ। शासक और शासित दो वर्गों का निर्माण हुआ है। खुश्चेव ने एक लेख में लिखा था कि मुझे पता नहीं चलता कि क्या किया जाये। छोटे बच्चों में भी यह वर्ग की भावना निर्माण हो रही है। शासक और तकनीशियनों के बच्चे स्कूल के मध्यावकाश में अलग ग्रुप बनाकर बैठते हैं और मजदूर–किसान के बच्चे अलग गुट में बैठते हैं। बचपन में ही वर्ग की भावना निर्माण हो रही है। उसे कैसे दूर किया जाये।

रूस के स्पुतनिक छोड़ने के बाद खुश्चेव ने एक उद्धृत वक्तव्य में कहा कि स्पुतनिक कम्यूनिज्म की विजय का परिणाम है। इस पर बर्ट्रेण्ड रसेल ने कहा था कि यह कम्यूनिज्म की विजय का नहीं, पराजय का प्रमाण है। यदि वैज्ञानिकों को विशेष सुविधा और अधिकार न दिये गये होते, तो स्पुतनिक विज्ञान और अनुसन्धान की प्रेरणा न मिली होती। किसी वर्ग को विशेष सुविधा

और अधिकार देना कम्यूनिज्म के घोषित सिद्धान्तों के प्रतिकूल है।

बात सिर्फ विशेषाधिकार प्राप्त एक–दो वर्गों की ही नहीं। आज कम से कम और ज्यादा से ज्यादा आमदनी में १ और ८० का अन्तर है। आय में अन्तर तो है ही। आर्थिक विषमता भी है और धीरे–धीरे अलग वर्ग बनते जा रहे हैं।

यह भी कहा गया है कि सरकार समाप्त हो जायेगी। यह विचार भी कभी साकार होगा, इसकी सम्भावना प्रतीत नहीं होती। कम्युनिस्ट देशों में सरकारें अधिकाधिक दृढ़ और मजबूत होती जा रही हैं। समाप्त होने की बात कहीं दिखायी नहीं देती।

राष्ट्र के व्यक्तित्व को स्वीकार करना पड़ा

कम्यूनिज्म स्वयं को अन्तर्राष्ट्रीयतावादी कहता है। वह राष्ट्र के व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं करता; लेकिन आज इन अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों की हालत बड़ी विचित्र है। आज अन्तर्राष्ट्रीयता के अन्दर से राष्ट्रवाद विकट रूप धारण करके खड़ा होता जा रहा है। स्वयं को अन्तर्राष्ट्रीयतावादी कहनेवाली कम्युनिस्ट सरकारों के राष्ट्रीय संघर्ष बिलकुल स्पष्ट हो गये हैं। वास्तव में देखा जाये, तो कम्युनिस्ट सरकारें अन्तर्राष्ट्रीयता का लेबिल भर लगाती हैं। पिछले महायुद्ध के समय रूस में हिटलर की फौज घुस गयी तो कम्यूनिज्म और अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर लोगों को लड़ने की और मरने की प्रेरणा प्राप्त नहीं हुई। स्टालिन को ऐसा अनुभव हुआ। इसलिए उन्होंने एक नारा दिया। वह था 'अपनी पवित्र पितृभूमि की सीमाओं की रक्षा के लिए' अगर वास्तव में कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीयतावादी हैं, तो उनकी पितृभूमि की सीमाएँ कहाँ से आयीं ? उनकी पितृभूमि की दो ही सीमाएँ हो सकती हैं– उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव।

राष्ट्रभाव को जगाया गया

कम्युनिस्ट तो कहते हैं कि वे छोटी संकीर्ण राष्ट्रीयता नहीं मानते। एकदम अन्तर्राष्ट्रीयता मानते हैं। कहते हैं कि हमारा हृदय बहुत विशाल है। उनके लिए तो सीमाओं (Frontiers) की कोई बात ही नहीं। यह उत्तरी ध्रुव से दक्षिण और यह दक्षिणी ध्रुव से उत्तर का सम्पूर्ण क्षेत्र उनकी सीमा में है; किन्तु जब देखा कि अन्तर्राष्ट्रीयता और कम्यूनिज्म के नाम पर लोगों को प्रेरणा नहीं मिलती, तो उन्होंने राष्ट्रीयता को स्वीकार किया, अपनी पितृभूमि की पवित्र सीमाओं की रक्षा की बात भी की। उन सब राष्ट्रपुरुषों, वीर पुरुषों जिन्हें

'फ्यूडल लार्ड्स' कह कर बुरी तरह निन्दित किया गया था, पुनः आगे लाया गया तथा सत्कारित किया गया। बड़े–बड़े सेनापतियों, पीटर दि ग्रेट जैसे राजाओं, केथरीन दि ग्रेट जैसी रानियों के नाम से जनता के राष्ट्रभाव का आह्वान किया गया। इनके पुतले फिर से लगाये गये और राष्ट्रपुरुषों के पुतले लगाने के कारण फिर रूसी जनता त्याग करने के लिए आगे बढ़ी और आज ऐसा दिखता है कि हर एक कम्युनिस्ट देशों में राष्ट्रीयता का जागरण हुआ है।

कम्युनिस्ट राष्ट्रों में संघर्ष होने लगे

अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का नाम लिया जाता है; किन्तु विभिन्न कम्युनिस्ट देश अपने–अपने राष्ट्रीय हितों के लिए एक–दूसरे के साथ लड़ते हुए दिखायी देते हैं। उदाहरणार्थ रूस और चीन का झगड़ा है। चीन अन्तर्राष्ट्रीयतावादी है और रूस भी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी है; किन्तु अपनी–अपनी राष्ट्रीयता के लिए दोनों अन्तर्राष्ट्रीयतावादी कम्युनिस्ट राष्ट्र एक–दूसरे से लड़ रहे हैं। युगोस्लाविया अन्तर्राष्ट्रीयतावादी है, रूस भी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी है; किन्तु दोनों अपने राष्ट्रीय हितों के लिए एक–दूसरे से लड़ रहे हैं। चेकोस्लोवाकिया अन्तर्राष्ट्रीयतावादी है, रूस भी अन्तर्राष्ट्रीयतावादी है। दोनों में राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए झगड़ा है। नाम अन्तर्राष्ट्रीयता का किन्तु काम राष्ट्रीयता का। राष्ट्रीय–हितों, आकाक्षांओं और व्यक्तित्वों के लिए कम्युनिस्ट देशों के संघर्षों ने अन्तर्राष्ट्रीयता के कोरे सैद्धान्तिक आवरण को समाप्त कर दिया है। उनके खोखलेपन को उजागर कर दिया है।

तर्क–मण्डन के लिए व्याख्या–भेद

कम्यूनिज्म मार्क्स के स्थूल मार्गदर्शक सिद्धान्तों से जगह–जगह पीछे हटता जा रहा है। हम हिन्दू चिन्तन की कसौटी से कम्यूनिज्म का मूल्यांकन नहीं करना चाहते हैं। कम्यूनिज्म अपनी कसौटी पर ही कितना खरा है यह देखना चाहते हैं। हमें देखना होगा कि कम्यूनिज्म को कम्युनिस्ट क्या मानते हैं ? कुछ रूढ़िवादी कम्युनिस्ट हैं– वे कहते हैं कि जो मार्क्स ने कहा है वह सब सही था। इस दृष्टि से वे हर चीज की पुष्टि करते हैं। बड़ी सफाई से उनके हर कथन का बचाव करना चाहते हैं, वे कहते हैं कि यह 'इज्म' है। इसलिए यह परिपूर्ण है और जो कुछ मनुष्य जाति की बुद्धि का अन्तिम शब्द है, मार्क्स ने ही कहा है। इसमें किसी भी कारण कोई फर्क नहीं पड़ सकता है। वह परम

निरपेक्ष सत्य है और इस दृष्टि से जहाँ–जहाँ मार्क्स गलत सिद्ध हुआ दिखायी देता है वहीं मार्क्स को सही सिद्ध करने के लिए मनमाने अर्थ निकालते हैं।

उदाहरण के लिए जब यह सिद्ध हुआ कि पदार्थ (Matter) आधारभूत नहीं है। तब उन्होंने ऐसी खोज शुरू की है कि मार्क्स अन्ध भौतिकतावादी (Crude Materialist) नहीं था। हालाँकि हमको तब तक यही बताया गया था कि मार्क्स कट्टर भौतिकवादी है। अब यह भी कहा जाता है कि मार्क्स भौतिकता के ऊपर की भी कुछ बात मानता था और उन्होंने उसके कुछ प्रमाण भी हमारे सामने पेश किये हैं। जैसे १८४२ में उन्होंने व्यक्ति स्वातन्त्र्य के बारे में और मुद्रण स्वातन्त्र्य के बारे में कुछ लेख लिखे थे। विशेष रूप से १८४४ में उन्होंने The Philosophical and Economic Manuscript of 1844. लिखा है। उन दोनों के आधार पर कहते हैं कि उन्हें अन्ध भौतिकतावादी नहीं कहा जा सकता है और वह पदार्थ (Matter) को ही सब कुछ नहीं मानते थे। मन–मस्तिष्क को भी मानते थे। इतने साल के बाद अब कहा जा रहा है कि मन–मस्तिष्क को भी मानते थे। हम जैसा मानते हैं कि मन–मस्तिष्क का स्वतन्त्र अस्तित्व है, इतना तो मार्क्स के नाम पर वे कहने को तैयार नहीं, पर अभी–अभी कम्युनिस्टों के एक वर्ग ने ऐसा कहना शुरू किया है कि पदार्थ प्रमुख है; लेकिन मन–मस्तिष्क के अस्तित्व से हम इन्कार नहीं करते। उन्होंने कहा कि मन का स्वायत्त अस्तित्व है। (Mind has autonomous existence) अब इसका मतलब है कि पदार्थ (Matter) सब कुछ है मन–मस्तिष्क (Mind) कुछ नहीं। ऐसा जब कहा गया, तो उसका अर्थ यह था कि सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ ही सब कुछ हैं और धर्म–संस्कृति–नीति नाम की कोई वस्तु नहीं है। धर्म, संस्कृति और नीति तो आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की अधिरचना है। जैसे मन–मस्तिष्क पदार्थ की अधिरचना है। वैसे ही मजहब, संस्कृति और नीति आदि आर्थिक, सामाजिक स्थितियों की अधिरचना है। "Culture, ethics & religion are super structures on socio-economic conditions."

धर्म और कम्यूनिज्म में समानता की खोज

वैसे ही अब उन्होंने कहा कि पदार्थ (Matter) का तो अस्तित्व है। वह प्रमुख भी है, पर मन–मस्तिष्क (Mind) का भी अपना अस्तित्व है। अब भी उसको स्वतन्त्रता का स्तर देने के लिए वे तैयार नहीं; लेकिन स्वायत्त हैसियत (Autonomous stature) उन्होंने दिया है। हिन्दुस्थान के कम्युनिस्टों के एक

वर्ग ने कहा है कि जैसे सामाजिक–आर्थिक स्थिति मजहब, नीति और संस्कृति को गढ़ती है, 'Socio-economic conditions mould culture, ethics and religion.' वैसे ही मजहब, संस्कृति और नीति आर्थिक और सामाजिक ढाँचे को गढ़ती है। दोनों एक–दूसरे पर क्रिया–प्रतिक्रिया करते हैं। "Culture ethics, and religion in their turn mould socio-economic conditions both act and react upon each other" यह एक सिद्धान्त है, जो पहले मार्क्स के प्रतिकूल माना गया था। यही अब मार्क्स के नाम पर व्याख्या देकर बताया जाता है कि मार्क्स के कहने का यही अभिप्राय था। अब तक मार्क्स के नाम पर सबने यह सुना था कि मजहब अफीम है (Religion is an opium) किन्तु अब मजहब के बारे में खासतौर पर इंग्लैण्ड, फ्रान्स, इटली और जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टियों ने अधिकृत रीति से कहना शुरू किया कि मार्क्स ने मजहब के बारे में जो कहा था वह सब सम–सामयिक चर्च नीति से प्रभावित चित्र था। वह उसके लिए तो सही था; किन्तु उनके मन्तव्य को सार्वजनीन न माना जाये। अलग–अलग देशों में अलग–अलग कालखण्ड के धर्म का क्या योगदान रहा है, उसका अलग–अलग मूल्यांकन करना पड़ेगा। इसी सिद्धान्त के आधार पर इटली की भी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख नेता टोगलीओट्टी ने पोप साहब के साथ समझौता किया था। कितना विचित्र है कि धर्म के घोर विरोधी कहे जानेवाले कम्युनिस्ट पार्टी के नेता ने ईसाई अर्थात् मजहब से केन्द्र बिन्दु पोप के साथ समझौता किया। अखबार में यह भी पढ़ा गया कि टोगलीओट्टी व्यक्तिगत रूप से पोप की तारीफ करते थे। टोगलीओट्टी की मृत्यु के बाद पोप ने भी कहा कि एक महान 'इटैलियन' मर गया। एक–दूसरे की प्रशंसा भी करने लगे। १९६६ की फरवरी में अखबारों में छपा कि ब्रिटेन में १० दिन का सम्मेलन हुआ। यह ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी के सब मन्त्रियों और ब्रिटिश चर्च के सब पादरियों का सम्मेलन था। १० दिन तक वे सब इकट्ठा रहे। विषय था 'धर्म और कम्यूनिज्म में समान तत्त्वों की खोज करना।' जब कम्यूनिज्म का निश्चित नियम है कि मजहब अफीम है फिर समान तत्त्वों की खोज क्यों हो रही है? मतलब यह हुआ कि पुनर्चिन्तन शुरू हुआ है।

भारतीय कम्युनिस्टों ने धर्म का रचनात्मक योगदान माना

थोडे दिन पहले, पहली बार किसी कम्युनिस्ट ने हिन्दुस्थान में यह लिखा कि यहाँ धर्म की भूमिका वह नहीं रही जो मार्क्स ने कही थी। उन्होंने स्पष्ट

रूप से लिखा कि भक्ति सम्प्रदाय का हिन्दुस्थान को इससे एक अलग योगदान रहा है। इसके कारण सामाजिक आधार पर सुधार भी आया है। भक्ति सम्प्रदायों के कारण पंजाब और महाराष्ट्र में राजनैतिक क्रान्तियाँ भी हुई हैं। यह श्रेय देनेवाला वाक्य कम्युनिस्टों द्वारा पहली बार लिखा गया। इसे श्री के दामोदरन् ने 'इण्डियन थॉट' (Indian Thought) नामक एक पुस्तक में लिखा है। कम्युनिस्टों ने अभी तक हिन्दुस्थान में जो कहा था और इस किताब में मार्क्सिज्म की जो व्याख्या की गयी है। यदि उन दोनों की तुलना करेंगे, तो कितना अन्तर या परिवर्तन आया है यह पता चल जायेगा। इस तरह से परिवर्तन ही परिवर्तन हम देखते हैं।

मार्क्स 'वाद' बनाना नहीं चाहते थे

वास्तव में मार्क्स के मन में स्वयं अपने सभी विचारों के संकलन को किसी वाद या 'इज्म' में परिणत करना अभिप्रेत था कि नहीं ? इस बारे में सन्देह है। इसके विपरीत इसके बारे में यह मानने की बड़ी भारी गुञ्जाइश है कि स्वयं मार्क्स अपने विचार को शास्त्रीय विचार की केवल एक दिशा भर मानता था। उसको 'वाद' या 'इज्म' में परिणत करने की इच्छा नहीं थी। स्वयं मार्क्स का एक वाक्य है– "Thank God I am not a marxist" (मैं भगवान् का बड़ा आभारी हूँ कि मैं मार्क्सवादी नहीं हूँ।) जो मार्क्स स्वयं अपने को मार्क्सवादी न होने पर 'भगवान्' से आभार प्रदर्शित करता था उसी के विचार संकलन का उनके अनुयायियों ने वाद (इज्म) बना डाला, यह उनके अनुयायियों का मार्क्स पर भारी अन्याय है। इज्म के सारे स्वरूप का आरोपण उसके ऊपर कर दिया और अब यह वाद (इज्म) के नाते असफल हो रहा है।

मार्क्सवाद मजहब बना दिया गया

यदि इतना ही माना जाता कि मार्क्सवाद ने एक शास्त्रीय विचार की दिशा मात्र दी, तो असफलता न होती। उसमें कई एक गतिमान और विकासशील विचार (Dynamic and developing) और विचार प्रणाली (Way of thinking) हैं, ऐसा यदि मान लिया तो उसमें परिवर्तन हो सकता है; लेकिन उसको यदि आप वाद (इज्म) मानते हैं अर्थात विचारों की बन्द किताब मानते हैं, तो उसमें सभी त्रुटियाँ दिखायी देती हैं। सुनिश्चित अर्थरचना का न देना मार्क्सवाद की जबरदस्त खामी है। अपने वैश्विक दर्शन में विज्ञान का जो आधार लिया था

वह सारा पैरों तले से खिसक रहा है। कम्यूनिज्म के सिद्धान्त विज्ञान की कसौटी पर ठीक नहीं उतर पा रहे हैं। आज रूस, युगोस्लाविया तथा चीन में कम्यूनिज्म पीछे की ओर हट रहा है। यह भी उसकी एक त्रुटि है। यदि यह कहा जाये कि मार्क्स का विचार 'वाद' (इज्म) नहीं है तो कम्युनिस्टों की प्रेरणा ही समाप्त हो जाती है। इसलिए मार्क्सवाद को उन्होंने मजहब बना डाला है। मजहब के सारे गुणों (Characteristics) को वे मार्क्स के विचारों में समाहित कर देना चाहते हैं। मजहब की पवित्र पुस्तक कुरान या बाईबिल की तरह एक पुस्तक रहे, मोहम्मद साहब या ईसामसीह की तरह एक मसीहा रहे, यह उनकी इच्छा रही है। मजहबी पुस्तक के स्थान पर उन्होंने 'दास कैपिटल' (Dass Capital) और पैगम्बर के स्थान पर उन्होंने मार्क्स को रख डाला। सात स्वर्गों के स्थान पर कम्यूनिज्म की उच्चतर अवस्थाओं (Higher phases of Communism) की कल्पना दी जो बिलकुल स्वर्ग के समान है, जहाँ सबको सब कुछ मिलेगा। इसके लिए उन्होंने एक 'अल्ला' भी बताया द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Materialistic Dilectism) इस तरह से एक मसीहा, एक धर्मग्रन्थ, एक स्वर्ग, एक अल्ला, इन सारे मजहब के तत्त्वों को मार्क्सवाद पर वे लागू करना चाहते हैं, उसमें से एक कट्टरता का आभास प्राप्त होता है।

विनाश के कगार पर

मार्क्सवाद विनाश के कगार पर खड़ा है। यदि इसे हठधर्मिता (Dogmatism) के रूप में स्वीकार करना है, तो आज ही उसकी पराजय स्वीकार करनी होगी। यदि इसकी विकासमान और गतिमान विचार–पद्धति (Developing and Dynamic thought) के नाते स्वीकार किया जाये, तो इसमें इतना परिवर्तन लाना पड़ेगा कि मार्क्स के साथ इसका कोई सम्बन्ध भी था, यह पहचान पाना मुश्किल हो जायेगा। मार्क्सवाद चौराहे पर खड़ा है। पथभ्रष्ट और दुविधाग्रस्त उसकी स्थिति है। अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का लेबिल लगाने वाले; किन्तु वस्तुतः राष्ट्रीयता की कट्टरता को लेकर चलनेवाले सभी साम्यवादी राष्ट्र राष्ट्रीय विस्तारवाद से उत्प्रेरित होकर अपने–अपने राष्ट्रीय साम्राज्यवाद को लेकर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। रूस और चीन अपने राष्ट्रीय और साम्राज्यवादी उद्देश्यों से भारत में अपना–अपना कम्युनिस्ट दस्ता तैयार करते रहे हैं और कर रहे हैं। उस पर भारी व्यय भी करते हैं। उस पर विचारधारा का आवरण चढ़ाते हैं।

कोई सच्चा कम्युनिस्ट नहीं

यह लगभग वैसी ही बात है जैसे सर्वप्रथम जागतिक इस्लाम एक केन्द्रित था। उस समय इस्लाम की लहरों में राष्ट्रीयता खो सी गयी थी; किन्तु विभिन्न देशों में राष्ट्रीयता के जागरण के साथ इस्लामी लोग राष्ट्रीयता के आधार पर बहु केन्द्रित हो गये और 'पान इस्लामिज्म' (Pan Islamism) समाप्त हुआ। यह ठीक है कि अन्तर्राष्ट्रीय 'इस्लाम की कल्पना का उपयोग राजनैतिक नेता राष्ट्रवाद के लिए आज भी कर रहे हैं। उसी तरह राष्ट्रीय विस्तारवाद के लिए मार्क्स के नाम का उपयोग किया जा रहा है। मूल्यांकन के लिए कम्युनिस्टों को ही सोचना है कि कम्यूनिज्म को क्या माना जा सकता है ? आज सब कम्युनिस्ट एक–दूसरे को सच्चा कम्युनिस्ट मानने के लिए तैयार नहीं। रूस के अनुसार चीन पथभ्रष्ट (Deviationist) है। चीन के अनुसार रूस पथभ्रष्ट है। रूस और चीन दोनों के अनुसार युगोस्लाविया पथभ्रष्ट है। युगोस्लाविया के अनुसार रूस और चीन दोनों पथभ्रष्ट हैं। हिन्दुस्थान के डाँगे के अनुसार नम्बूद्रीपाद पथभ्रष्ट है। नम्बूद्रीपाद के अनुसार डाँगे पथभ्रष्ट है। दोनों के अनुसार चारु मजूमदार पथभ्रष्ट है। कम्युनिस्टों ने एक–दूसरे को जो प्रमाण–पत्र दे दिये हैं यदि उन सबको इकट्ठा किया जाये और सबका मूल्यांकन किया जाये तो मानना पड़ेगा कि तमाम कम्युनिस्ट देश पथभ्रष्ट हो गये हैं। (World communism is equal to world deviationism.) इज्म या वाद के नाते कम्यूनिज्म या मार्क्सवाद की इससे बढ़ कर असफलता और क्या हो सकती थी ?

✦

हमारे अन्य प्रकाशन

१.	डा. हेडगेवार चरित्र	-	ना.ह. पालकर
२.	नवयुग प्रवर्त्तक श्री गुरुजी	-	च.प. भिशीकर
३.	श्री गुरुजी-अविस्मरणीय जीवन	-	संकलित
४.	राष्ट्रजीवन की दिशा	-	पं. दीनदयाल उपाध्याय
५.	भारतीय अर्थनीति-विकास की दिशा	-	पं. दीनदयाल उपाध्याय
६.	राष्ट्र चिन्तन	-	पं. दीनदयाल उपाध्याय
७.	उत्तिष्ठित जाग्रत	-	एकनाथ रानडे
८.	पथ और पाथेय	-	भगिनी निवेदिता
९.	हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्रोत	-	सुरेश सोनी
१०.	वन्देमातरम् की आत्मकथा	-	रंगाहरि
११.	घुसपैठ- एक निःशब्द आक्रमण	-	श्रीकान्त जोशी
१२.	कश्मीर समस्या और समाधान	-	मा.गो. वैद्य
१३.	राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और राष्ट्रीय परिदृश्य	-	संकलित
१४.	हमारे डॉक्टर जी (सचित्र)	-	संकलित
१५.	श्री गुरुजी - रेखाचित्र दर्शन	-	मूलचन्द्र अजमेरा
१६.	कर्मयोगी- दत्तोपन्त ठेंगड़ी	-	डा. गौरीनाथ रस्तोगी
१७.	सावरकर विचार दर्शन (वृहत)	-	चि.वा. केलकर
१८.	राष्ट्र सर्वोपरि	-	हृदयनारायण दीक्षित
१९.	आकाश हमारे सीने में	-	तरुण विजय
२०.	राष्ट्रधर्म दृष्टा श्री अरविन्द	-	रामनाथ शर्मा
२१.	अधूरी क्रान्ति	-	डॉ. सम्पूर्णानन्द
२२.	डॉ. अम्बेडकर और सामाजिक क्रान्ति की यात्रा	-	दत्तोपन्त ठेंगड़ी
२३.	सन्देश चिन्तन	-	डा. पु.ग. सहस्रबुद्धे
२४.	भारतीय समाज जीवन और आदर्श	-	रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सत्यमेव जयते